National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2016; 1(5): 14-15
© 2016 NJHSR
www.sanskritarticle.com
Received: 16-03-2016
Accepted: 17-03-2016

निशा वर्मा
पीएच॰ डी॰, शोध छात्रा,
हिन्दी विभाग, जम्मूविश्वविद्यालय,
जम्मू।

Correspondence:
निशा वर्मा,
पीएच॰ डी॰, शोध छात्रा,
हिन्दी विभाग, जम्मूविश्वविद्यालय,
जम्मू।

‘ शब्द भी हत्या करते हैं ’ उपन्यास में चित्रित मानवीय संवेदना

निशा वर्मा

मनुष्य मुलततः संवेदनशील प्राणी है। संवेदना मानव हृदय की अमूल संपदा है। हमारे लौकिक जीवन में सुखात्मक एवं दुखात्मक दो अनुभूतियाँ प्रधान हैं। इन दोनों का अनुभव मनुष्य अपने वैयक्तिक जीवन में करता है। सभी मानसिक घटनाओं के मूल में चूंकि संवेदना का तत्व अनिवार्यता निहित होता है, इसलिए समस्त भावनाओं और अनुभवों में भी संवेदना की उपस्थिति अनिवार्य है। यदि जीवन में संवेदना न हो तो मनुष्य पाषाण हो जाता है। दूसरों के सुख-दुख को अनुभव करने वाला हृदय ही न रहा तो मनुष्य के पास मनुष्य कहलाने के लिए कुछ भी नहीं बचेगा। प्रत्येक साहित्यकार संवेदना को माध्यम बनाकर अपना साहित्य सृजन करता है। हृदेश भी इसके अपवाद नहीं । उन्होंनें युगबोध एवं युगचेतना के साथ मानवीय संवेदना को ‘शब्द भी हत्या करते हैं ’ उपन्यास में अभिव्यक्ति दी है।

पुंजीवादी क्रमव्यवस्था मनुष्य को दिन-प्रतिदिन संवेदनाशून्य बनाती जा रही है। आजकल व्यक्ति अपने आस-पड़ोस व परिवारजनों के दुख-सुख से भी कटता जा रहा है। इस दयनीय स्थिति में मनुष्य के हृदय में संवेदना मानों बची ही नहीं। जिसे लेखक ने उपन्यास में साकेत के माध्यम से दिखाया है। वह पढ़-लिखकर आत्मकेन्द्रित हो जाता है। जिसके चलते परिवार से कटकर एक अलग दुनिया बसा लेता है। वह इतना संवेदनहीन एवं आत्मकेन्द्रित हो जाता है, कि माँ-बाप से मिलना तक ठीक नहीं समझता। पिता द्वारा घर बुलाये जाने पर अनेक बहाने बनाता है- “ पापा, डाक्टर, वकील का पेशा ऐसा है कि न चले तब परेशानी और चले तब परेशानी। महीना, डेढ़ महीना पहले की बात नहीं। याद आ गया दो महीने से ऊपर की वह बात है। कोई छुट्टी थी। एक मुकदमें के सिलसिले में दूसरे वकील गुप्ता से बहुत जरूरी मिलना था। मेन रोड पर जाम था। आप वाली गली से होकर निकला था। बहुत जल्दी में था। गुप्ता जी से टाइम ले रखा था।... पापा मुवक्किल सामने बैठा है। फुरसत से फिर बात करूंगा। मेरा घर भी पापा आपका घर है।” पृ॰64

आज चारों ओर संवेदनहीनता जिस तरह पनप रही है। उसका सर्वाधिक प्रभाव बुज़ुर्गों पर पड़ रहा है। वे उपेक्षा एवं अमानवीय व्यवहार के शिकार हो रहे हैं। लोगों के दिलों और घरों में बुजुर्ग लोगों के लिए सचमुच स्पेस बहुत कम होती जा रही है। जिनके लिए उन्होंनें अपना सारा जीवन दे दिया। जिन्हें पाल-पोसकर इतना सक्षम बनाया कि वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें, वही सन्तानें उन्हें बोझ समझनें लगी हैं। अधिकांश घरों में बुज़ुर्ग सदस्य घुट-घुट कर मौत का इंतजार करते हैं। बहुतेरे युवा दम्पति बुज़ुर्गों को आवश्यक दवाइयां व पर्याप्त भोजन न देकर धीरे-धीरे मौत के मुँह में धकेल देते हैं। ज्यादातर वरिष्ठ नागरिक अकेलेपन और अवसाद भरी ज़िन्दगी जीने के लिए विवश हैं। लेखक ने ऐसे अनगिनत बुज़ुर्गों के दर्द को शारदाशरण के माध्यम से उभारा है- “ यह कारण न होता तब भी बेटे अलग ही रहते। इस अनैतिक और गुंडा समय में खून के रिश्ते भी डिस्पोज़ल आइटम्स बन गये हैं ।” पृ॰ 81

भारतीय समाज में मानव सम्बन्ध संकट में हैं। दाम्पत्य जीवन के पुराने मूल्यों का विघटन हो रहा है। अस्मिता एवं अहंभाव की प्रवृति उभर रही है। जिसके चलते दाम्पत्य जीवन में तनाव आ जाता है। जिसे लेखक ने उपन्यास में कामरेड के माध्यम से दिखाया है। पितृसत्तात्मक मानसिकता के कारण कामरेड अपने अंह को अधिक महत्व देता है। वह चाहता है कि पत्नी उसकी इच्छा का सम्मान करे। दरअसल कामरेड नास्तिक है। उसे पूजा-पाठ से चिढ़ है। जबकि पत्नी आस्तिक है। वह धर्म-कर्म में विश्वास रखती है। कामरेड इसे अपना अपमान समझता है। जिसके चलते वह पत्नी को प्रताड़ित करता रहता है- “ बन्द करो यह बेवकूफी। मना कर चुका हूँ कि इस घर में यह पोंगापन्थी नहीं चलेगी। यह जहालत की अलाभत है।” पृ॰ 53

अन्ततः पत्नी घरेलु हिंसा से तंग आकर आत्महत्या कर लेती है। आज भी कामरेड जैसे अनेक पुरूष हैं। जो समय के साथ स्वयं को बदलने के लिए तैयार नहीं, बल्कि अपनी हठधर्मिता एवं जकड़ीली सोच के कारण ही अपने लिए ऐसे हादसों को बुलावा देते हैं। लेखक विचारधारायों से ऊपर उठकर मानवता को महत्व देता है। लेखक के शब्दों में - “ मैं विचारों और मान्यताओं की जकड़बन्दी का ज़्यादा कायल नहीं। दूसरों के साँस लेने भर की यहाँ खुली जगह रहना ज़रूरी है। अगर दूसरा मानवीय गुणों को अपने तरीके से अपनाए रहता है तो उसकी सोच का रास्ता भी गलत नहीं है।” पृ॰ 53

सभ्यता के विकास के साथ-साथ अनेक धर्मों व विचारों ने भी जन्म लिया है। प्रत्येक धर्म व विचार का मूल तत्व मानवता है। मानवता की इस पृष्ठभूमि को बनाए रखने के लिए सर्वप्रथम हिंसात्मक परिवेश से बचना चाहिए ताकि एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण हो सके। न कि धर्म के विभिन्न विवादों में उलझकर मानवीयता में असंवेदनशीलता का समावेश करें। आज धार्मिक उन्माद में सारा देश जल रहा है। धर्म के नाम पर रक्त बहाया जा रहा है। लेखक के शब्दों में- " बहुसंख्यक जनों को समेंटने वाले पाप-पुण्य, गलत-सही, अनैतिक, नैतिक के दंड और पुरस्कार का ऊपरी विधान बहुत कुछ समाज को व्यवस्थित एवं नियन्त्रित रखता है। धर्म और विचारों के व्याख्याकारों को इनके इस सकारात्मकता को उजागर करना चाहिए। मानवता को साधने से सब सध जाएगा, वांछित परिवर्तन भी और वह भी अहिंसा के रास्ते चलकर आया हुआ।" पृ53

सामप्रदायिकता की चपेट में फंसा व्यक्ति मानसिक व शारीरिक यातना सहता है। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए मनुष्य ने धरती को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट दिया है और उसे अलग-अलग नाम दे दिये हैं। कोई हिन्दू राष्ट्र है तो कोई मुस्लिम, याहूदी या फिर ईसाई। लेकिन मनुष्यता के लिए कोई राष्ट्र नहीं है। जो धर्म मनुष्य के लिए बनाया गया था, उसी को मनुष्य ने हथियार के रूप में प्रयोग किया है। जिसे पकड़कर वह इन्सान से हैवान बन रहा है। लेखक ने साम्प्रदायिकता के अभिशाप को नकार कर मानवीय मूल्यों की स्थापना के संकल्प को उपन्यास में व्यंजना दी है – " औरंगजेब की बजाय हम अकबर को क्यों न देखें या दाराशिकोह को। शिवाजी महाराज के सामने युद्ध में पकड़ी गयी शत्रु पक्ष की एक मुस्लिम महिला को पेश किया गया था। शिवाजी ने उसको फौरन बाइज्जत सही सुपुर्दगों में पहुँचाने का आदेश दिया था। रानी झांसी ने अपने तोपखाने की कमान एक मुसलमान को दे रखी थी। हमारा ध्यान इस ओर क्यों नहीं जाता है ?.. आज़ादी के बाद हमको विरासत में इस या उस धर्म से जुड़ें जितने भी पूजा-स्थल, इबादगाह मिले हैं, उनको उस रूप में बनाए रखें। और भी समझदारी यह होगी कि हम नये ऐसे स्थानों के निर्माण के बजाय अस्पताल स्कूल, कॉलेज व उच्च तकनीकी संस्थान खोलें। आज के समय में ये भी पूजागृह जैसे हैं।" पृ 76

अतः लेखक ने पूरी तरह से जाति, सम्प्रदाय और देश की व्यक्ति-निर्मित दीवारों की अपेक्षा मानवतावादी सम्बन्धों को महत्वपूर्ण माना है, जो उनके व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है। लेखक ने धर्म के नाम पर पथभ्रष्ट लोगों से मानवीय संवेदनाओं तथा मूल्यों को बचाए रखने की उम्मीद लगाई है। मानवता के समक्ष जात-पात कोई मायने नहीं रखती है। मानवीयता सभी धर्मों से ऊपर है। लेखक के शब्दों में -" हमको कबीर, नानक, सूफी सन्तों की सीख को अपनाना चाहिए। हमारे आचार में मनुष्यता ही केन्द्र में रहे, वही जीवन की गतिविधियों की धूरी बने। सुनह मानुष भाई, संसारे ऊपर मानुष सत, तहारे ऊपर नाहिं।" पृ 76

इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि संसार के विभिन्न राष्ट्रों में जातिगत, वर्गगत एवं धर्मगत चाहे कितनी भी बाहरी पृथकता क्यों न हो, मानवीय संवेदना के रूप में हम सब समान हैं।